IJCRT.ORG ISSN : 2320-2882

INTERNATIONAL JOURNAL OF CREATIVE RESEARCH THOUGHTS (IJCRT)

An International Open Access, Peer-reviewed, Refereed Journal

धार्मिक अनुभूति के मार्ग : स्वामी विवेकानंद

प्रो. (डॉ.) संजय कुमार सिंह
दर्शनशास्त्र विभाग,
इन्स्टीट्यूट ऑफ ओरिएण्टल फिलॉसफी,
वृन्दावन मथुरा (उ.प्र.)

प्रदीप कुमार
शोधार्थी (दर्शनशास्त्र विभाग)
इन्स्टीट्यूट ऑफ ओरिएण्टल फिलॉसफी,
वृन्दावन मथुरा (उ.प्र.)

शोध सार :

स्वामी विवेकानंद भारतीय धार्मिक परंपरा के ऐसे महान विभूति हैं जिन्होंने भारत के प्राचीन गौरव को विश्व स्तर पर स्थापित करने में सर्वाधिक महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। उनका जीवन त्यागमय और चरित्र उच्च कोटि का था । उन्होंने भारतीय आध्यात्मिक चेतना को पुनर्जीवित करने के लिए जीवन भर अथक प्रयत्न किया। प्रत्येक मनुष्य में बिना किसी भेदभाव के परमात्मा के दर्शन करने वाले विवेकानंद मानव प्रेम के उच्चतम उदाहरण है। उनका कहना है, सभी मनुष्य परमात्मा के अंश हैं। अपने इस परमात्म स्वरुप का अनुभव करना मनुष्य का परम कर्तव्य है। इसलिए अपने वास्तविक स्वरूप के ज्ञान के लिए वह धर्म की शरण लेता है । धर्म का कार्य है कि वह मनुष्य को उसकी वास्तविकता का बोध करा दे।

विवेकानंद ऐसे पहले धार्मिक व्यक्ति हैं जिन्होंने भारत के ऋषियों के इस महान संदेश को विश्व व्यापी बनाया- जिसमें कहा गया कि परमात्मा के अतिरिक्त अन्य किसी की सत्ता नहीं है। हर जीव ,यहां तक कि हर वस्तु परमात्मा का ही स्वरुप है। साथ ही साथ यह भी कहा गया कि उस परमात्मा तक पहुंचाने के अनेक मार्ग है। कोई भी धर्म या संप्रदाय यह नहीं कह सकता कि परमात्मा की प्राप्ति केवल उसके द्वारा बताए गए रास्ते पर चलकर ही होती है। विवेकानंद भारत के ऋषियों की इस उद्घोषणा को विश्व व्यापी बनाते हैं ,और सभी धर्म की सत्यता की स्वीकार्यता को दुनिया के सम्मुख प्रस्तुत करते हैं। वह कहते हैं की दुनिया के जितने भी धर्म है सभी सत्य है । सभी एक ही लक्ष्य की ओर जा रहे हैं -वह है परमात्मा। इसलिए मार्ग को लेकर किसी भी प्रकार की संकीर्णता वही कर सकता है जिसे ईश्वर अथवा धर्म के विषय में अज्ञानता है। उन्होंने कहा हमें यह निश्चित रूप से स्वीकार करना चाहिए कि सभी मार्ग परमात्मा को उपलब्ध कराते हैं। यह केवल मान्यता नहीं है बल्कि पूर्णतया तरह सत्य है। श्री रामकृष्ण परमहंस ने अपने जीवन में इस सत्य को चरितार्थ किया था। इसलिए सभी मार्ग सत्य है और सभी मार्ग स्वीकार्य हैं। व्यक्ति अपनी प्रवृत्ति के अनुसार किसी भी मार्ग पर चलकर अपने लक्ष्य -परमात्मा को प्राप्त कर कर सकता है। प्रस्तुत लेख में स्वामी विवेकानंद द्वारा भारतीय धर्म शास्त्रों में बताए गए ईश्वर साक्षात्कार के मार्गो का अध्ययन किया जाएगा। यह भी देखा जाएगा कि स्वामी विवेकानंद द्वारा प्रस्तुत धार्मिक अनुभूतियों के मार्गों का सहारा लेकर व्यक्ति अपना और समाज का उत्थान कैसे कर सकता है।

बीज शब्द : दिव्यता की अनुभूति, कर्मयोग, ज्ञानयोग, भक्तियोग,राजयोग, आत्म साक्षात्कार।

स्वामी विवेकानंद ने सनातन धार्मिक परंपरा के साधना मार्गों को वर्तमान समय के अनुसार प्रस्तुत किया है। क्योंकि वर्तमान युग, बुद्धि प्रधान है तथा विज्ञान और तकनीकी का है। इसलिए स्वामी जी ने विभिन्न मार्गो का विश्लेषण विज्ञान और तर्क बुद्धि के आधार पर किया। धर्म को नितांत व्यक्तिगत साधना के रूप में स्वीकार करने वालों के लिए स्वामी विवेकानंद कहते हैं, यदि कोई यह सोचता है कि वह अपना आत्म कल्याण बिना जगत के कल्याण के कर सकता है तो ऐसा संभव नहीं है। क्योंकि व्यक्ति और जगत में तात्विक अंतर नहीं है। उनकी दृष्टि में अपना कल्याण और जगत का कल्याण एक दूसरे पर निर्भर है तथा एक दूसरे से जुड़े भी हुए हैं। जब हम जगत का कल्याण करते हैं तो अपना कल्याण अपने आप हो जाता है। यदि हम अपना कल्याण करते हैं अर्थात व्यक्तिगत साधना करते हैं तो उस साधना के फल स्वरुप अपनी चेतना को अन्य जीवों में देखते हैं। जिसका परिणाम यह होता है कि हमसे जगत का कल्याण अपने आप होने लगता है। यही धर्म का रहस्य है। जिसने इस रहस्य को जान लिया उसने धर्म को जान लिया।

गीता में ईश्वर साक्षात्कार अथवा आत्मसाक्षात्कार के तीन प्रमुख मार्गों का उल्लेख मिलता है। जिसमें ज्ञानमार्ग, भक्तिमार्ग और कर्ममार्ग आते हैं। स्वामी विवेकानंद ने पतंजलि योग- सूत्र की व्याख्या आधुनिक वैज्ञानिक परिप्रेक्ष्य में प्रस्तुत कर उसे राजयोग के रूप में प्रस्तुत किया। इस प्रकार भारतीय धार्मिक परंपरा में साधना के चार मार्ग हो जाते हैं। विवेकानंद इन चारों मार्गों को 'योग' के रूप में प्रस्तुत करते हैं। ज्ञानयोग ,भक्तियोग कर्मयोग और राजयोग -यह चारों योग, साधना के सभी पद्धतियों को अपने में समाहित कर लेते हैं। वह स्पष्ट करते हैं कि यह चारों 'योग 'एक ही लक्ष्य को प्राप्त करने की मार्ग है। मार्ग के रूप में यह अलग हैं, लेकिन लक्ष्य के रूप में सभी का लक्ष्य एक ही है । स्वामी जी द्वारा अभिव्यक्त साधना के मार्ग चातुष्टय से सम्बंधित विवेचना इस प्रकार है...

ज्ञान योग:

ऐसे लोग जिनके स्वभाव में बुद्धि की प्रधानता होती हैं- सहज में समर्पण नहीं कर पाते। ऐसा व्यक्ति अपने तर्क -बुद्धि और अनुभव को समान रूप से संतुष्ट करना चाहता है। वह जानना चाहता है कि जिस ज्ञान को मैं ग्रहण कर रहा हूं, उसका आधार क्या है? उसके पीछे तर्क क्या हैं? इस ज्ञान को ग्रहण करने से हमारे जीवन में क्या परिवर्तन आता है ? यदि हमारे ज्ञान के अनुसार हमारे जीवन में परिवर्तन नहीं होता तो उसे ज्ञान का मूल्य क्या है। जब तक तर्क -बुद्धि और अनुभव से वह संतुष्ट नहीं हो जाता तब तक किसी मान्यता अथवा सिद्धांत पर श्रद्धा नहीं रख पाता। वह किसी बात को इसलिए नहीं स्वीकार कर लेता की यह बात किसी महापुरुष ने कही है। वह किसी बात को इसलिए भी नहीं स्वीकार करेगा कि यह बात किसी महान ग्रंथ में लिखी गई है। ज्ञान योग का पथिक अपने ब्रह्म स्वरूप का अनुभव प्राप्त करना चाहता है। वह जानता है कि केवल शब्द ज्ञान पर्याप्त नहीं है। अनुभव के बिना सारा ज्ञान थोथा ज्ञान है। जिसका कोई धार्मिक मूल्य नहीं है ।

स्वामी जी कहते हैं-" ज्ञान योग का साधक जानता है कि सत्य को केवल पुस्तक पढ़ने से नहीं जाना जा सकता, उसके लिए आत्मचिंतन, ध्यान और ब्रह्मचिंतन आवश्यक है।"(1)

ऐसे साधक के लिए सबसे महत्वपूर्ण प्रश्न होता है –

. मैं कौन हूं?

.इस संसार का मूल तत्व क्या हैं?

.जीवन का अंतिम लक्ष्य क्या है ?

इन सब प्रश्नों के उत्तर को वह अनुभव से जानना चाहता है। वह शास्त्रों में उल्लेख किए गए ऋषियों की बातों को केवल बुद्धि में नहीं रखना चाहता बल्कि साक्षात अनुभव करना चाहता है। शास्त्रों में कहा गया हैं- आत्मा अमर, अजर और अविनाशी है। आत्मा का न कभी जन्म होता है ना कभी मृत्यु होती है। आत्मा सच्चिदानंद स्वरुप है। शास्त्रों में यह भी कहा गया है कि इस आत्मा का साक्षात अनुभव किया जा सकता है। इसलिए ज्ञान योग का पथिक शास्त्रों में कहे गए सत्य को साक्षात अनुभव करना चाहता है।

इस संबंध में स्वामी विवेकानंद कहते हैं –"ज्ञान मार्ग हमें यह समझाता है कि हम शरीर या मन नहीं हैं, हम आत्मा है -शुद्ध, अमर और नित्य हैं"।(2) स्वामी जी आगे यह भी कहते हैं कि ज्ञानमार्ग वेदांत दर्शन का मार्ग है। वेदांत का सर्वोच्च रूप अद्वैत दर्शन है । अद्वैत दर्शन के अनुसार आत्मा और परमतत्व अद्वैत स्वरूप है। अज्ञान के कारण हमें आत्मा का अनुभव नहीं हो रहा है। इसके स्थान पर हमें शरीर, मन ,बुद्धि का अनुभव हो रहा हैं। नित्य ब्रह्म के स्थान पर परिवर्तनशील जगत का अनुभव हो रहा है। अद्वैत दर्शन में इसे माया कहा जाता है। माया के कारण ही नित्य में अनित्य का दर्शन हो रहा है। माया के कारण ही यह सारा संसार और उसकी वस्तुएं परिवर्तनशील और अनित्य है। आत्मा के संबंध में शास्त्रों में कहा गया कि हम नित्य और अनंत हैं ,परंतु माया के कारण हम जीव के रूप में नश्वर और सीमित है। इसी कारण हमें सुख और दुख भोगना पड़ रहा है।

उपनिषद कहते हैं, ज्ञान से अविद्या का नाश होता है। अविद्या के नाश होते ही हमें अपने वास्तविक स्वरूप का साक्षात्कार होता हैं- जो शाश्वत और आनंद स्वरूप है। ब्रह्म ज्ञान अथवा तत्व साक्षात्कार में हमें अपनी आत्मा का बोध होता हैं। आत्मज्ञान के उपरांत पता चलता है की आत्मा का न कभी जन्म होता है न कभी मृत्यु । अनादि काल से हम अविद्या के कारण सुख और दुख रूपी खेल में उलझे हुए हैं। स्वामी जी कहते हैं- "सभी आत्माएं सदैव से खेल कर रही हैं- कुछ जानकर, कुछ अनजाने में -और धर्म वह है जो इस खेल को जागरूकता पूर्वक करना सिखाता है।(3)

इस प्रकार यह समस्त ज्ञान की बातें तत्वज्ञान के जिज्ञासुओं के लिए प्रेरणा का कार्य करते हैं। परंतु ज्ञान प्रधान व्यक्ति शब्द ज्ञान से ही संतुष्ट नहीं होते, क्योंकि उन्हें पता है कि इससे हमारी आत्मा का बोध तो होता नहीं ,उल्टे हम इस थोथे ज्ञान के अहंकार में अपने को महाज्ञानी समझकर आत्मा को जानने का प्रयास भी करना बंद कर देते हैं। ऐसे में बहुमूल्य जीवन व्यर्थ हो जाता है। ज्ञान प्रधान व्यक्ति की सबसे प्रमुख चिंता यह होती है की शब्दों से प्राप्त ज्ञान को किस प्रकार अनुभव में लाया जाए।

अब प्रश्न उठता है कि आत्मज्ञान का उपाय क्या है? कैसे हम अपने वास्तविक स्वरूप का ज्ञान प्राप्त कर सकते हैं? कौन सी वह साधना पद्धति है जिसके अनुसरण से आत्म साक्षात्कार होता हैं?

उनके लिए यह भी जिज्ञासा का विषय है कि आत्मज्ञानी पुरुषों के लक्षण क्या हैं, जिनके पास जाकर सत्य का अनुभव किया जा सकता हैं?

यह सारे प्रश्न ज्ञान मार्ग पर चलने वाले साधकों के भीतर उठने वाले जीवंत प्रश्न है।

अब हम इस विषय पर स्वामी जी के मंतव्य को समझने का प्रयास करते हैं। आत्मज्ञान या ब्रह्म ज्ञान प्राप्त करने के लिए स्वामी जी वेदांत दर्शन में बताए गए साधना मार्ग का संदेश देते हैं। उनका कहना है कि वेदांत दर्शन के चार अंगों का पालन करने से आत्म साक्षात्कार का मार्ग प्रशस्त होता है। जिसमें चार चरण निम्नलिखित हैं-

प्रथम चरण है विवेक- विवेक का अर्थ हैं, व्यक्ति को नित्य और अनित्य के बीच अंतर स्पष्ट रूप से समझ में आ जाना चाहिए । जब हमारी समझ में क्षणिक वस्तुओं और नित्य तत्व के बीच अंतर समझ में आने लगता है, तो विवेक दृष्टि की शुरुआत होती है। हम सभी जानते हैं की शरीर, मन, बुद्धि और उनके सारे विषय अनित्य है। फिर भी हम अनित्य के प्रति आसक्त रहते हैं। विषय भोगों के पीछे दौड़ते रहते हैं । बार-बार दुख मिलने के बाद भी हमारे भीतर यह जिज्ञासा नहीं होती कि हम दुखों से कैसे मुक्त हो । जब तक हम अनित्य वस्तुओं के प्रति अपनी आसक्ति को नहीं छोड़ पाते हैं तब तक हमारे भीतर विवेक दृष्टि नहीं आती । जैसे ही अनित्य वस्तुओं के प्रति हमारी आसक्ति कम होने लगती हैं, हम विवेक दृष्टि को उपलब्ध होते हैं। नित्य और अनित्य वस्तुओं में स्पष्ट अंतर समझ में आने के बाद धीरे-धीरे अनित्य वस्तुओं के प्रति वैराग्य उत्पन्न होने लगता है ।

यह दूसरी अवस्था है जिसे वैराग्य की अवस्था कहा गया है। क्योंकि अनित्य वस्तुएं सुख का प्रलोभन देकर अंततः दुख देती है । जब अनित्य के प्रति पूर्ण निराशा भाव उत्पन्न होता हैं, तब उनके प्रति आसक्ति खत्म होने लगती है । इसे ही वैराग्य कहते हैं । अब विषय भोग आकर्षित नहीं करता है। साधक यह समझने लगता है की अनित्य वस्तुएं आती हैं और जाती हैं, लेकिन उनके आने-जाने को देखने वाला कोई शाश्वत तत्व है । वह हमेशा बना रहता है। हर अवस्था में उपस्थित रहता है। जो जागृत, स्वप्न और मूर्छावस्था- तीनों में नित्य वर्तमान रहता है। चेतना की तीनों अवस्थाओं में जो नित्य है उस नित्य तत्व के अनुभव की जिज्ञासा का प्रारंभ होता है। यह जिज्ञासा केवल मनोवैज्ञानिक और बौद्धिक स्तर पर नहीं होता बल्कि हृदय की अंतर्तम गहराई से निकलता है ।

इस अवस्था को मुमुक्षा कहते हैं। जब साधक यहां तक पहुंच जाता है तब उसे षट् संपत्ति धारण कराया जाता है। यह 6 सद्गुण हैं, जिसे- शम ,दम उपरति ,तितिक्षा, श्रद्धा और समाधान कहते हैं। जिस पर चलकर वह अपने वास्तविक स्वरूप का अनुभव करता है। इस प्रकार स्वामी विवेकानंद ज्ञान मार्ग के द्वारा अपने स्वरूप को जानने का उपाय देते हैं। इस मार्ग पर चलकर साधक को यह अनुभव हो जाता है कि वह ब्रह्म से अभिन्न है। वह सच्चिदानंद स्वरुप है। उसका न कभी जन्म हुआ था और न कभी मृत्यु। यह अनुभव बौद्धिक और मनोवैज्ञानिक अनुभव नहीं है । यह इंद्रियों का अतिक्रमण कर ब्रह्म से अद्वैत रूप अनुभव है। यह वह अवस्था है जहां पर माया रूपी अंधकार सदैव के लिए नष्ट हो जाता है आत्मज्ञानी कह उठता है –" अहं ब्रह्मास्मि । स्वामी जी कहते हैं-" जैसे लहरें समुद्र से भिन्न नहीं होती, वैसे ही आत्मा ब्रह्म से भिन्न नहीं है। यह केवल माया का भ्रम है जो हमें अलग-अलग अनुभव कराता है "।(4)

इस प्रकार परम ज्ञान की अवस्था में द्वैत का लोप हो जाता है। सब कुछ एक ही सत्ता में तदरूप हो जाता है। ऐसा बोध होता है-" संपूर्ण ब्रह्मांड एक अविभाज्य परमात्मा है और हम उसी के अंग हैं- अपनी आत्मा और परमात्मा अभिन्न नहीं है"।** यहां कोई भेद नहीं है। सभी इस अवस्था को उपलब्ध करने के अधिकारी हैं -बिना किसी भेदभाव के। सभी इस मार्ग पर चलने के अधिकारी हैं। स्वामी जी का यह संदेश मानव जाति का सर्वोच्च संदेश है।

भक्ति योग :

भक्ति योग प्रेम और समर्पण के द्वारा ईश्वर तक पहुंचने का मार्ग है। यह ज्ञान के शुष्क और कर्म के कठोर पथ का अनुगमन नहीं करता। ऐसी प्रवृत्ति के लोगों में सहज ही ईश्वर के प्रति प्रेम श्रद्धा और समर्पण होता है। हृदय प्रधान होने के कारण इनका मस्तिष्क ईश्वर के प्रेम में किसी प्रकार का बाधा नहीं बनता। विवेकानंद कहते हैं –" भक्ति ईश्वर प्राप्ति का सबसे सरल, सुलभ और हृदय स्पर्शी मार्ग है। यह प्रेम का चरम रूप है जो आत्मा को ईश्वर से एकाकार कर देता है।"(5) स्वामी जी चारों योगों में भक्ति को 'हृदय का योग ' कहते हैं। यह ऐसा मार्ग है जिसमें हृदय अत्यंत संवेदनशील और उच्च स्तरीय चेतना के प्रति ग्रहणशील होता है। वह ईश्वर के विषय में किसी प्रकार का तर्क वितर्क नहीं करना चाहता।

ऐसे में प्रश्न उठता है कि क्या तर्क- बुद्धि को अस्वीकार करना- अंधविश्वास का अनुगमन करना नहीं होगा?

भक्ति और अंध विश्वास में अंतर कैसे किया जाए? स्वामी जी कहते हैं कि भगवान के प्रति सहज समर्पण अंधविश्वास नहीं है। अंधविश्वास और ईश्वर के प्रति प्रेम में कुछ अंतर हैं, जो इस प्रकार है। अंधविश्वास में भक्त भगवान से अपेक्षा करता है। वह प्रेम को स्वार्थपूर्ण बना देता है जो वास्तव में प्रेम नहीं होता। स्वामी जी कहते हैं सच्चा प्रेम निस्वार्थ होता है। यह भक्त के हृदय की वह अवस्था है जहां भक्त अपने 'स्व' को भी अपना नहीं मानता है। वह कहता है कि हमारा सर्वस्व ईश्वर का ही है। स्वामी जी कहते हैं-" भक्ति वह अवस्था है,

जहां भक्त अपने संपूर्ण अस्तित्व को ईश्वर को अर्पित कर देता है। उसमें न लोभ की आकांक्षा होती है और न ही भय का कोई स्थान" ।(6) इसका अर्थ यह हुआ की प्रेम सामान्य भावुकता नहीं है। यहां अपने इच्छाओं और वासनाओं के लिए ईश्वर को मध्यस्थ नहीं बनाया जाता। यह तो परमात्मा के प्रति पूर्ण समर्पण है । जहां न कोई इच्छा है और न कोई दुख। भक्त को संपूर्ण जगत में ईश्वर की अनुभूति होती है। भक्ति में प्रेम ही साधन है और प्रेम ही साध्य। इस अवस्था में सारे राग द्वेष समाप्त हो जाते हैं। संपूर्ण जगत उसके लिए प्रेम का पात्र हो जाता है। उसका प्रेम सभी के लिए बिना शर्त प्रवाहित होने लगता है। क्योंकि अब सभी में उसे ईश्वर के दर्शन होने लगते हैं। जहां स्वार्थ पूरी तरह समाप्त हो जाता है वहां अंधविश्वास की कोई संभावना नहीं रहती है।

स्वामी जी कहते हैं-" जो यह मानता है कि वह ईश्वर से प्रेम करता है परंतु मनुष्यों से द्वेष करता है वह सच्चा भक्त नहीं हो सकता" ।(7) इस प्रकार स्वामी विवेकानंद भक्ति की विशेषता को स्पष्ट कर देते हैं कि यह केवल सामान्य भावनात्मक लगाव नहीं है बल्कि शुद्ध प्रेम की अवस्था है। शुद्ध भक्ति में भक्त अपने भीतर ईश्वर का अनुभव करता है। उसके आचरण में सभी के लिए समान रूप से बिना किसी भेदभाव के प्रेम, सहानुभूति, दया और करुणा का जन्म होता है। यदि ऐसा नहीं होता तो इसका अर्थ है कि अभी उसके भीतर ईश्वर के प्रति भक्ति का जन्म नहीं हुआ है।

जब यह भक्ति उच्चतम अवस्था पर पहुंचती है तब यह जीवों के रूप में प्रकट परमात्मा की सेवा में अनायास ही समर्पित होती है। स्वामी जी कहते हैं-" भक्तियोग अपने आप में पूर्ण है, परंतु जब यह ज्ञान और कर्म से संयुक्त होता है तब और भी बलवती हो जाती है।"(8) स्वामी जी का निष्कर्ष यह है कि यदि हृदय में ईश्वर के प्रति प्रेम होगा तो उस प्रेम के कारण जगत के रूप में अभिव्यक्त परमात्मा के प्रति उसके कर्तव्य अपने आप प्रकट होने लगते हैं। इस प्रकार विवेकानंद की दृष्टि में भक्ति केवल भावना में ही नहीं रह सकती इसका व्यावहारिक रूप अपने आप जीव सेवा के रूप में प्रगट होने लगता है। वह अपने को मूर्ति पूजा तक नहीं रोक सकता। अब वह जीवित मूर्तियों की सेवा में अपना कर्तव्य कर्म निभाना शुरू कर देता है। वह कहते हैं- "ईश्वर की उपासना केवल मंदिर में ही नहीं बल्कि मानव सेवा में भी होनी चाहिए..... जीवो में शिव का दर्शन करो" ।(9)

इस प्रकार स्वामी विवेकानंद का भक्तियोग ईश्वर के प्रेम से प्रारंभ होकर अपने 'स्व' के पूर्ण समर्पण से होते हुए अंततः जीव सेवा में प्रकट होती है । हमारी आत्मा सारे संकीर्णताओं से मुक्त होकर विराट चेतना से जुड़कर पूर्ण स्वतंत्रता को उपलब्ध हो जाती है।

कर्म योग :

स्वामी विवेकानंद कहते हैं-" कर्म योग वह योग है जो मनुष्य को कर्म करते हुए भी उसमें बंधे बिना आत्मा की ओर ले जाता है।"(10) सामान्यतया हम सभी यही सोचते हैं कि कर्म बंधन में डालते हैं और हमारे कर्मों का फल निश्चित रूप से हमें मिलता है । भारतीय धार्मिक परंपरा कर्म सिद्धांत को पूरी तरह स्वीकार करती है। शुभ कर्म का कर्म शुभ और अशुभ कर्म का फल दुख निश्चित रूप से मिलता है। जिसे हम कर्म सिद्धांत कहते हैं। कर्म सिद्धांत के अनुसार कर्म चक्र ही जन्म और पुनर्जन्म का कारण बनता है। कर्म सिद्धांत को स्वीकार करते हुए भारतीय धार्मिक परंपरा इस सिद्धांत को भी स्वीकार करती है की कर्म की कुशलता कर्म के बंधन से मुक्त कर देती है। गीता में इसे निष्काम कर्म कहा गया । ऐसे कर्म जो अपने निजी कामना से नहीं किए जाते बल्कि कर्तव्य कम समझ कर किए जाते हैं, जिससे जगत का कल्याण होता है और अपनी आत्मा का उद्धार होता है। गीता के इस भाव को स्वामी जी इस प्रकार कहते हैं –"कर्म को कर्तव्य समझकर करो" ।(11) उनका कहना है की कर्तव्य कर्म के अनुपालन से 'कर्म 'भी मुक्ति का द्वार बन जाता है। स्पष्ट है कि कर्तव्य 'कर्म' बंधनकारी नहीं होते हैं, बल्कि आसक्ति ही वह डोर है जो 'कर्म' के साथ लगे रहने पर जीव को बांध लेता है। यदि आसक्ति रूपी डोर न रहे तो 'कर्म' जीव को बंधन में नहीं डालता। विवेकानंद कहते हैं अपने आप को ईश्वर का उपकरण बना दो उसी के लिए समस्त कर्म करते जाओ। ईश्वर को अर्पित किए हुए यह सारे कर्म उपासना का रूप धारण कर आत्मा के विकास में सहायक होते हैं। वह कहते हैं-" कर्म करते जाओ परंतु उसमें आसक्त मत रहो -अपने को केवल ईश्वर का उपकरण मानो ।"(12)

अब हमारे सामने कर्मों के चुनाव का प्रश्न आता है । आखिर कर्म किसके लिए किया जाए और कौन सा कर्म किया जाए? कर्तव्य और अकर्तव्य कर्म में अंतर कैसे किया जाए? विवेकानंद की दृष्टि में ईश्वर के रूप में मनुष्य हमारी सेवा के पात्र हैं। अर्थात कर्म हमें मनुष्यों के लिए करना है। उनका कहना हैं, तुम असहाय, दुर्बलों और अशिक्षित मनुष्यों में ईश्वर को देखो और उनकी सेवा करो । अपनी क्षमता अनुसार मनुष्य की सेवा करना ही कर्तव्य कर्म है । वह कहते हैं- " यदि तुम मनुष्य की सेवा में ईश्वर को नहीं देख सकते तो मंदिर में भी नहीं देख सकते।"(13) उन्होंने अपने गुरु श्री रामकृष्ण के इस महावाक्य को कर्म योग का आधार बनाया- जिसमें उन्होंने कहा था- अपनी मुक्ति और जगत का कल्याण- दोनों ही लक्ष्य जिस कर्म से प्राप्त हो ऐसा ही कर्म ,कर्तव्य कर्म है और वही उच्चतम जीवन का आधार है। ऐसे ही व्यक्ति अपने कर्मों से अपने चरित्र बल और आत्म बल को विकसित कर पूर्ण स्वतंत्रता और

आनंद को प्राप्त कर लेते हैं। स्वामी जी आगे कहते हैं-" कर्म से चरित्र बनता है और चरित्र ही मनुष्य की आत्मा की शक्ति को विकसित करता है।"(14)

इस प्रकार स्वामी विवेकानंद भारतीय समाज को इस बात के लिए प्रेरित कर रहे हैं कि वह अपने पुराने धार्मिक मूल्यों को पुनर्जीवित करें तथा आलस्य , भाग्यवादिता और निष्क्रियता से मुक्त होकर जागृत और उन्नत भारत का पुनर्निर्माण करें। उन्होंने कर्म और सेवा को धर्म का महत्वपूर्ण अंग बना दिया, तथा संदेश दिया कि यदि हम अपने प्राचीन आध्यात्मिक गौरव को जीवन में उतार सके तो हम पूरी मानवता को नया संदेश देकर विश्व के उन्नत भविष्य का मार्ग प्रशस्त कर सकते हैं ।

राजयोग :

स्वामी विवेकानंद राजयोग को ध्यान का मार्ग कहते हैं। इसमें हम मन की शक्तियों को केंद्रित कर भौतिक जगत और अंतर जगत के विषयों का ज्ञान प्राप्त करते हैं। सामान्य अवस्था में मन अलग-अलग विषयों में संलग्न रहता है । मन अपने चंचल स्वभाव के कारण पूरी शक्ति के साथ विषय पर एकाग्र नहीं होता। मन का स्वभाव ही है कि वह अलग-अलग विषयों में निरंतर चलायमान रहता हैं, जिसके कारण मन की शक्तियां बिखर जाती है। इसलिए हमे भौतिक जगत के विषय में भी हमें पूर्ण ज्ञान नहीं मिल पाता । राजयोग का यह कहना है की पूर्ण ज्ञान के लिए मन की पूरी शक्ति का संबंधित विषय पर केंद्रित होना आवश्यक है। राजयोग की यह मान्यता है कि यदि हमें ज्ञान प्राप्त चाहते हैं तो मन की शक्ति को एकाग्र करके ही प्राप्त कर सकते हैं। चाहे वैज्ञानिक हो, दार्शनिक हो या बुद्धिजीवी- यह सभी अपने मन की शक्ति को केंद्रित कर संबंधित विषय पर लगाते हैं तभी उन्हें उसे विषय का पूरा ज्ञान मिलता है।भौतिक जगत का ज्ञान प्राप्त करना हो अथवा आध्यात्मिक जगत का- दोनों ही में मन की शक्ति को एकाग्र करना आवश्यक है। एकाग्र मन में किसी भी विषय को समग्रता में देखने की क्षमता आ जाती है। राजयोग के अनुसार यदि हम मन की शक्ति को अंतर जगत में प्रयोग करें तो हमारी चेतना के सारे आयाम हमारे अनुभव में आ जाते हैं। जिस विषय पर मन पूरी तरह एकाग्र होता है उस विषय का पूरा ज्ञान उपलब्ध हो जाता है। यही राजयोग का विज्ञान हैं। हम मन की बिखरी हुई शक्तियों को केंद्रित कर चेतना के समस्त स्तरों को जान सकते हैं और अंत में मन को पूर्ण शांत करके आत्मा का साक्षात्कार कर सकते हैं। राजयोग के अनुसार यदि मन को स्थिर कर दिया जाए तो चित् की वृत्तियां शांत हो जाती हैं । इस शांत अवस्था में आत्मा का पूर्ण स्वरूप चित् में प्रतिबिंबित हो जाता है। आत्मा अपने वास्तविक स्वरूप को चित् में देख लेता है । जैसे ही वह अपने वास्तविक स्वरूप को देख लेता है वह प्रकृति से अपने को अलग कर लेता है ।

योग दर्शन में योग की परिभाषा मे कहा गया-"योग चित् वृत्तियों का निरोध है"(15)। अर्थात योग वह है जो चित् की चंचल वृत्तियों को पूरी तरह शांत कर दे। जिससे आत्मा उस शांत चित् में अपने स्वरूप का ज्ञान प्राप्त कर ले। फिर आगे कहा गया-" योग समाधि है।" जैसे ही चित् पूरी तरह शांत होता है, वह अवस्था समाधि की है। अर्थात आत्म साक्षात्कार की है। इस अवस्था तक पहुंचाने के लिए योग दर्शन में आठ अनुशासन को बताया गया है। जिन्हें हम यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि के रूप में समझते हैं । यह आठ सीढ़ियां हैं जिस पर चलकर हम आत्मा के साम्राज्य में प्रवेश करते हैं। योग के अंतिम चरण समाधि में प्रकृति का पुरुष से अलगाव हो जाता है। पुरुष अर्थात आत्मा अपने मूल स्वरूप -शुद्ध चैतन्य को उपलब्ध हो जाता है।

अनादि काल से प्रकृति के बंधन में सुख और दुख को भोगता हुआ पुरुष सदैव के लिए दुखों से मुक्त हो जाता है। स्वामी जी कहते हैं- "राजयोग के माध्यम से हम आत्मा के साम्राज्य में प्रवेश करते हैं और वही हमारा सच्चा राज्य है।"(17)

विवेकानंद के अनुसार जिस प्रकार विज्ञान में प्रयोग और अनुभव की प्रक्रिया अपनाई जाती हैं, उसी प्रकार राजयोग भी प्रयोग और अनुभव पर आधारित है । हम योग दर्शन के आठ अंगों का पालन करते हैं तो हमारे अनुभव हर स्टेज पर प्रकट होते हैं। जैसे-जैसे हम आगे बढ़ते हैं, हमारा अनुभव भी बढ़ता है। जब हमें सत्य का अनुभव होने लगता है ,तब हम आत्मविश्वास के साथ योग पथ पर दृढ़ता पूर्वक चलने लगते हैं। अंत में परम लक्ष्य आत्म साक्षात्कार तक पहुंच जाते हैं। यहां पर विवेकानंद इस बात की चेतावनी देते हैं कि जैसे विज्ञान में कुशल प्रशिक्षक अथवा वैज्ञानिक का निर्देशन आवश्यक है ,ठीक उसी प्रकार योग में भी कुशल गुरु का होना आवश्यक है। क्योंकि मन की शक्तियां भौतिक शक्तियों की तरह अपना कार्य निश्चित रूप से करती हैं, ऐसे में शक्तियां यदि सही दिशा में प्रवाहित न हो तो शरीर को और मन को क्षति पहुंच सकती है। विज्ञान के संबंध में सबसे बड़ी विशेषता है कि वह निश्चित नियमों से चलता हैं । कुयोग से बचने के लिए योग के नियम और अनुशासन का व्यतिक्रम नहीं होना चाहिए । स्वामी जी के अनुसार- "राजयोग एक मनोवैज्ञानिक प्रयोगशाला है जहां साधक अपने ही मन को उपकरण बनाकर सत्य की खोज करता है।" (18) इसलिए इस पथ पर चलने वालों के लिए अनुशासन, संयम, दृढ़ संकल्प और वैराग्य की अत्यंत आवश्यकता है।इस प्रकार हम सिद्ध गुरु के मार्गदर्शन में योग के द्वारा सर्वाधिक तीव्र गति से अपने स्वरूप का ज्ञान प्राप्त कर सकते हैं।

राजयोग के माध्यम से स्वामी विवेकानंद ने धर्म को विज्ञान के समक्ष प्रामाणिक रूप से प्रस्तुत कर दिया। स्वामी विवेकानंद ने न केवल भारत के प्राचीन अध्यात्म विज्ञान को गौरवान्वित किया है , बल्कि धर्म को अंधविश्वास की मान्यता से पूरी तरह मुक्त करके मानवता की बहुत बड़ी सेवा की है।

निष्कर्ष :

इस प्रकार विवेकानंद ने भारतीय धार्मिक परंपरा में आत्म कल्याण और जगत कल्याण को एक दूसरे से जोड़कर धर्म, अत्यंत व्यापक बना दिया है। आधुनिक मनुष्य आध्यात्मिक उन्नति के लिए स्वामी द्वारा बताए गए इनमें से किसी भी मार्ग का अनुसरण कर अपना कल्याण तो करेगा ही, साथ ही साथ उसके द्वारा संसार का भी कल्याण संभव होगा। स्वामी विवेकानंद द्वारा प्रस्तुत धर्म के अनुपालन में बिना किसी भेदभाव के आपसी सद्भाव के साथ मानव कल्याण का मार्ग प्रशस्त होता है। यह वह मार्ग हैं- जिसमें सभी के कल्याण में अपना कल्याण निहित है। वैचारिक संकीर्णता और विद्वेष पूर्ण वातावरण में जहां लोग अपने निजी मान्यताओं मे आसक्ति के कारण अन्य मान्यताओं के प्रति सहानुभूति और सद्भाव नहीं रख पा रहे हैं, वहां विवेकानंद की यह धार्मिक दृष्टि मानवता के उज्जवल भविष्य के लिए वरदान स्वरुप है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1.विवेकानंद स्वामी (2003) द कम्प्लीट वर्क्स ऑफ़ स्वामी विवेकानन्द, कोलकाता: अद्वैत आश्रम, खंड 2, पृ.15

2.विवेकानंद स्वामी (2003) द कम्प्लीट वर्क्स ऑफ़ स्वामी विवेकानन्द, कोलकाता: अद्वैत आश्रम, खंड 2, पृ.4

3.विवेकानंद स्वामी (2003) द कम्प्लीट वर्क्स ऑफ़ स्वामी विवेकानन्द: कोलकाता, अद्वैत आश्रम, खंड, 3, पृष्ठ 36

4..विवेकानंद स्वामी (2003) द कम्प्लीट वर्क्स ऑफ़ स्वामी विवेकानन्द कोलकाता: अद्वैत आश्रम, खंड, 2 पृष्ठ - 20

5..विवेकानंद स्वामी (2003) द कम्प्लीट वर्क्स ऑफ़ स्वामी विवेकानन्द, कोलकाता: अद्वैत आश्रम खंड, 3 पृष्ठ 31

6..विवेकानंद स्वामी (2003) द कंप्लीट वर्क्स ऑफ स्वामी विवेकानंद, कोलकाता: अद्वैत आश्रम, खंड, 3 पृष्ठ 34

7.विवेकानंद स्वामी (2003) द कम्प्लीट वर्क्स ऑफ़ स्वामी विवेकानन्द, कोलकाता: अद्वैत आश्रम, खंड 3 पृष्ठ 36

8..विवेकानंद स्वामी(2003) द कम्प्लीट वर्क्स ऑफ़ स्वामी विवेकानन्द: कोलकाता अद्वैत आश्रम खंड 3, पृष्ठ 42

9..विवेकानंद स्वामी (2003) द कम्प्लीट वर्क्स ऑफ़ स्वामी विवेकानन्द:कोलकाता, अद्वैत आश्रम, खंड 3 पृष्ठ 47

10..विवेकानंद स्वामी (2003) द कम्प्लीट वर्क्स ऑफ़ स्वामी विवेकानन्द: कोलकाता, अद्वैत आश्रम, खंड 1, पृष्ठ 23

11..विवेकानंद स्वामी(2003) द कम्प्लीट वर्क्स ऑफ़ स्वामी विवेकानन्द, कोलकाता: अद्वैत आश्रम, खंड 1, पृष्ठ 26

12.विवेकानंद स्वामी(2003) द कम्प्लीट वर्क्स ऑफ़ स्वामी विवेकानन्द: कोलकाता अद्वैत आश्रम, खंड,1 पृष्ठ 29।

13..विवेकानंद स्वामी (2003) द कम्प्लीट वर्क्स ऑफ़ स्वामी विवेकानन्द: कोलकाता, अद्वैत आश्रम, खंड 1 पृष्ठ 35,

14..विवेकानंद स्वामी(2003) द कम्प्लीट वर्क्स ऑफ़ स्वामी विवेकानन्द, कोलकाता: अद्वैत आश्रम, खंड 5, पृष्ठ 40

15..विवेकानंद स्वामी (2003) द कंप्लीट वर्क्स ऑफ़ स्वामी विवेकानंद:कोलकाता अद्वैत आश्रम, खंड-1, पृ. 121

16..विवेकानंद स्वामी, द कंप्लीट वर्क्स ऑफ़ स्वामी विवेकानंद: कोलकाता अद्वैत आश्रम, खंड -1 पृष्ठ, 130

17..विवेकानंद स्वामी (1907) द कम्प्लीट वर्क्स ऑफ़ स्वामी विवेकानन्द: कोलकाता, अद्वैत आश्रम, खंड-8 पृष्ठ 123

18..विवेकानंद स्वामी द कम्प्लीट वर्क्स ऑफ स्वामी विवेकानन्द, कोलकाता, अद्वैतआश्रम, खंड - 1 पृष्ठ 135